प्राक्कथन

आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में अनेक चुनौतियों से जूझ रहे अपने देश की वर्तमान स्थिति हरेक संवेदनशील मन को व्यथित करती है। हालांकि आज प्रत्येक समस्या का समाधान राजनीति द्वारा ढूंढने का चलन है, लेकिन प्रख्यात समाजसेवी व चिंतक नाना जी ने 70 के दशक में ही भांप लिया था, कि राजनीति से देश का उद्धार संभव नहीं है। इसलिए उन्होंने अपने चमकदार व सफल राजनीतिक जीवन से संन्यास लेकर युगानुकुल सामाजिक पुनर्रचना का अनुकरणीय नमूना जनता की पहल एवं पुरूषार्थ के आधार पर खड़ा करने का निर्णय लिया। गांवों में कोई गरीब न रहे, कोई बेकार न रहे, कोई बीमार न रहे, कोई भी अशिक्षित न हो तथा गांव हरा-भरा, साफ-सुथरा व विवादों से मुक्त हो। इसलिये दीनदयाल शोध संस्थान ने चित्रकूट क्षेत्र में सामूहिक प्रयत्न से परस्परपूरकता के आधार पर अनुकरणीय नमूना खड़ा करने का प्रयास किया है। इन प्रयोगों को सफलता प्राप्त हो रही है। देश के युवाओं ने इस दिशा में कदम बढ़ाये तो देश की गरीबी और बेकारी मिटाना मुश्किल नहीं है। इस कार्य के लिए न हमें अपनी सरकार की ओर ताकने की जरूरत है, और न ही विदेशी निवेश पर निर्भरता की। बस आवश्यकता है तो अपने सोऐ हुए पुरूषार्थ को जगाने की और यह काम सिर्फ देश की स्वाभिमानी युवा पीढ़ी ही कर सकती है।

इसलिए समय-समय पर मा. नानाजी ने युवाओं से संवाद स्थापित करने के लिए उनके नाम कई पत्र लिखे। उन पत्रों में जहां देश की वर्तमान समस्याओं का सटीक वर्णन है, वहीं उनके समाधान के लिए उनसे आह्वान भी किया गया है। इन महत्त्वपूर्ण पत्रों का पहला संकलन प्रस्तुत किया जा रहा है।

दिनांक : 24 दिसंबर, 2004

प्रिय युवा बंधुओं और बहनों,

मैं यह पत्र गहरे दु:ख और क्षोभ के साथ, परंतु पूरी जिम्मेदारी के भाव से लिख रहा हूं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए हमारा संघर्ष काफी यातनापूर्ण था और बहुत लंबे काल तक चलता रहा। इसके लिए देश के लाखों नौजवानों ने अपने प्राणों की आहूति दी। परंतु, इस सबके बावजूद इसकी परिणति खंडित भारत के रूप में हुई।

हमने संसदीय लोकतंत्र को चुना और मानव अधिकार के मूल तत्वों को अपने संविधान में शामिल किया। इसी संविधान ने केंद्र तथा राज्यों में विधायिका की व्यवस्था दी जो देशभर में एक संवेदनशील तथा उत्तरदायी शासन सुनिश्चित कर सके। दुर्भाग्य से इसकी परिणति एक ऐसे राजनीतिक नेतृत्व के रूप में हुई जिसने लोकतंत्र की मूल भावना से ही धोखा किया। यह राजशाही के संस्थानों की याद दिलाता है। स्थिति शायद उससे भी बुरी बनी है।

हमारे एक तिहाई से ज्यादा देशवासी अत्यंत गरीबी से जुझ रहे हैं। वे अपने मूलभूत अधिकारों से भी वंचित है। लगभग आठ करोड़ युवक-युवतियां बेरोजगारी की यातनाएं सहने के लिए मजबूर हैं। वहीं दूसरी ओर हमारे राजनीतिक नेतागण, विशेषकर हमारे चुने हुए प्रतिनिधि अधिकाधिक धनवान बनते जा रहे हैं। इसने निश्चित रूप से हमारे लोकतंत्र की प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिलाया है।

इस सबके ऊपर विडंबना यह है कि ऋण के बोझ तले दबती सरकार जहां बजट घाटे को नियंत्रित करने में नाकाम है वहीं जनता के तथाकथित प्रतिनिधि बेशर्मी से अपनी सुख-सुविधाओं का बोझ देश पर लादते चले जा रहे हैं। चूंकि विभिन्न राज्य सरकारों की राजस्व व गैर-राजस्व आय विभिन्न उत्तरदायित्वों की पूर्ति में चुक जाती है, इसलिए उन्हें विकास कार्यों के लिए आंतरिक व बाहरी कर्ज का सहारा लेना पड़ता है। इस तरह सरकारों के लिए विकास की प्राथमिकता दूसरे पायदान पर आती है।

वर्ष 2003-04 में केंद्र सरकार का आंतरिक व विदेशी कर्ज़ क्रमश: 11,34,020.35 करोड़ रुपये था। वहीं इस राशि पर केवल ब्याज के रूप में वर्ष 2003-04 में 1,24,554.92 करोड़ रुपये की मोटी रकम खर्च की गई थी। (देखें तालिका)